हमारी प्रमुख पत्रिकाएँ

(1) **अखण्ड ज्योति हिंदी** (मासिक)
वार्षिक मूल्य– **108/-**,आजीवन–**2000/-**
अखण्ड ज्योति अंग्रेजी (द्वि–मासिक)
वार्षिक मूल्य– **78/-**
पता : अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी,मथुरा
फोन : (0565) 2403940

(2) **युग निर्माण योजना** (मासिक)
वार्षिक मूल्य- **54/-**, आजीवन– **1000/-**
युग शक्ति गायत्री (गुजराती मासिक)
वार्षिक मूल्य- **85/-**, आजीवन-**1800/-**
पता - युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा
फोन - (0565) 2530128,2530399
फैक्स नं.-(0565) 2530200

(3) **प्रज्ञा अभियान** (पाक्षिक)
वार्षिक मूल्य- 30/-
पाक्षिक वीडियो पत्रिका : युग प्रवाह
वार्षिक मूल्य- 1500/-
पता : शांतिकुंज, हरिद्वार (उत्तराखंड)
फोन :- 01334-260602

JS 77

जन्म शताब्दी पुस्तकमाला- ७७

आत्मविकास के चार चरण

(प्रवचन)

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं. श्रीराम शर्मा आचार्य
जन्म शताब्दी
1911 2011
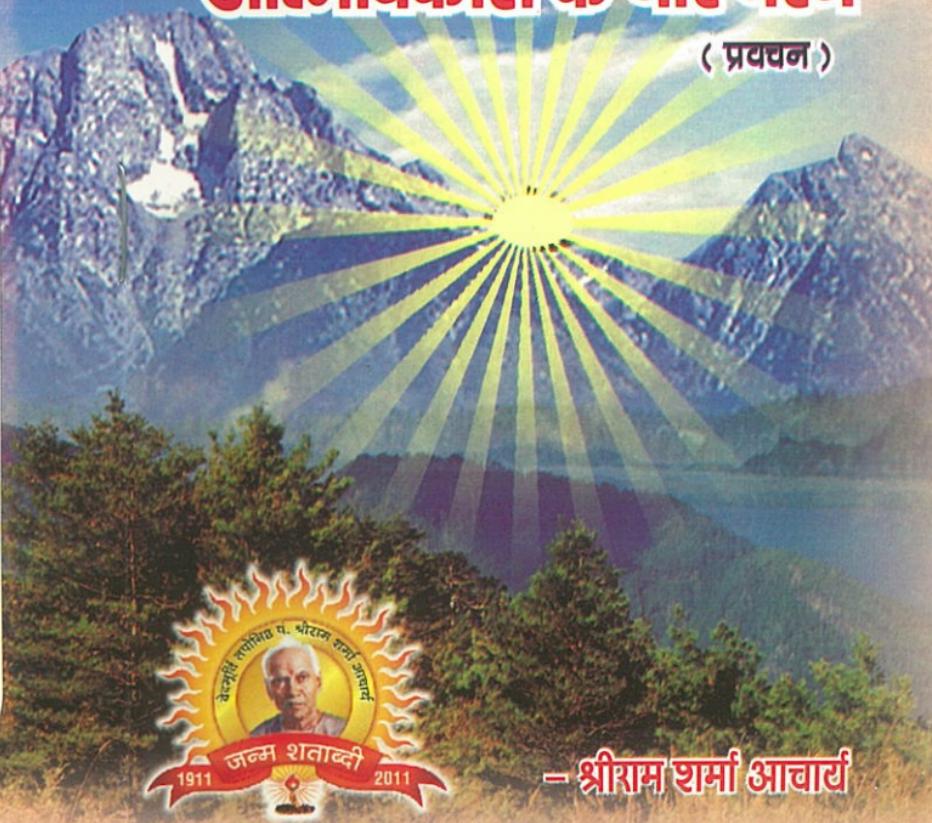
– श्रीराम शर्मा आचार्य

माता भगवती स्वचालित पुस्तकालय

यह पुस्तक आद्यशक्ति माँ गायत्री की कृपा से आपके पास आई है। इसे पवित्र स्थान पर रखें, परिवार में सबको पढ़ाएँ, मुख्य अंश नोट करें, उन्हें अपने आचरण में ढालें। पढ़कर पुस्तक किसी अन्य पात्र व्यक्ति को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन के जीवन को प्रकाशित करता चले। दीप से दीप जलता चले। आप भी कुछ पुस्तकें समाज में बाँटें।

सौजन्य से :

मूल्य : तीन रुपये

आत्मविकास के चार चरण

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

देवियो, भाइयो! भजन-पूजन की बात आप सुन चुके, स्वाध्याय और सत्संग की बात भी कर ली। इसके अतिरिक्त पूजापरक-उपासनापरक दो और भी आध्यात्मिक प्रयोग हैं, जो आपको करने ही चाहिए। इनमें से एक का नाम है, 'चिंतन' और दूसरे का नाम है, 'मनन'। चिंतन और मनन के लिए किसी कर्मकांड की जरूरत नहीं है, किसी पूजा-विधान की जरूरत नहीं है और किसी समय निर्धारण की जरूरत नहीं है। अच्छा तो यह हो कि इन सब कामों के लिए आप सवेरे का समय ही रखें। अध्यात्म साधना के लिए सबसे अच्छा समय प्रातःकाल का ही है। दूसरे कामों के लिए भी प्रातःकाल का ही है, यानी कि चौबीस घंटों में जो सबसे अच्छा समय है,

वह प्रात:काल का ही है। प्रात:काल के समय को आप जिस भी काम में लगा देंगे, उसी काम में आपको बड़ी प्रसन्नता मिलेगी और सफलता भी मिलेगी।

अंतर्गुहा में प्रवेश करें

इसलिए चिंतन और मनन की एकांत साधना के लिए अगर आप प्रात:काल का समय निकाल पाएँ, तो बहुत अच्छा। कदाचित् प्रात:काल का समय निकालना आपके लिए संभव न हो तो आप ऐसा करें कि और कोई समय एक साथ मनोयोगपूर्वक काम करने हेतु आप निकाल लें। जब कभी आप यह देख पाएँ कि एक आधा घंटा या पंद्रह मिनट का समय ऐसा निकलता है, जिसमें आप शांतचित्त हैं। इसमें मन के लिए शांतचित्त होना जरूरी है। भागदौड़ में, रास्ता चलते, चलते-फिरते कहीं भी जप कर लेंगे, नहीं, ऐसा मत कीजिए। चिंतन-मनन के लिए ऐसा संभव नहीं है। इसके लिए ऐसा स्थान होना चाहिए, जहाँ बाहरी विक्षेप उत्पन्न न होता हो और

आपका मन शांत और एकाग्र हो जाता हो। इसके लिए कोई मुनासिब एकांत का स्थान मिल जाए, तो और भी अच्छा, लेकिन अगर न मिले, तो आप आँखें बंद करके भी ऐसी जगह बैठ सकते हैं, जहाँ कोलाहल न हो। आँखें बंद कर लेंगे, तब भी गुफा-निवास की स्थिति बन जाती है। गुफा में चले जाना और शांत-एकांत में चले जाना एक ही बात है। अगर ऐसा संभव न हो तो आप आँखें बंद कर लें। आँखें बंद करना भी एक काम है। आँखें बंद करने से भी बहुत काम बन सकता है। आँखें बंद कर लेने पर भीतर ही भीतर का दिखता है, बाहर न कुछ है और न दिखता है।

अत: आप अपनी आँखें बंद करके अपने आप को एकांत में समाया हुआ देखें। इस प्रकार जैसे भी काम चल सकता हो, चिंतन-मनन के लिए आप कहीं थोड़ी देर के लिए शांतचित्त से बैठ जाएँ और यह समझें कि हम अकेले हैं, कोई हमारा साथी और सहकारी नहीं है। साथी अपनी जगह पर,

सहकारी अपने स्थान पर, कुटुंबी अपने स्थान पर, पैसा अपने स्थान पर, व्यापार अपने स्थान पर, खेती-बाड़ी अपने स्थान पर, इन सबको अपने-अपने स्थान पर रहने दीजिए। आप तो सिर्फ यह अनुभव कीजिए कि हम एकाकी हैं और एकांत में बैठे हुए हैं। फिर क्या करें? फिर आप दो तरह के विचार करना शुरू कीजिए। यह विचार करने की शैली है। यह ध्यान की शैली नहीं है, यह विचारणा है। चिंतन और मनन में विचार करने की गुंजाइश है, मन को भागने की पूरी छूट है। ध्यान में तो एक केंद्र में ही करना पड़ता है, पर इसमें एक केंद्र में नहीं करना पड़ता। इसके लिए विचार करने के लिए काफी लंबी-चौड़ी गुंजाइश है।

चिंतन अर्थात अपनी समीक्षा

चिंतन उसे कहते हैं जिसमें भूतकाल के लिए विचार किया जाता है कि हमारा भूतकाल किस तरीके से व्यतीत हुआ। इसके बारे में आप समीक्षा कीजिए। आप अपनी समीक्षा तो नहीं कर पाते,

लेकिन दूसरों की समीक्षा करना अच्छी तरह जानते हैं। आप पड़ोसी की समीक्षा कर सकते हैं, अपनी बीबी के दोष निकाल सकते हैं, बच्चों की नुक्ताचीनी कर सकते हैं, सारी दुनिया की गलती निकाल सकते हैं, भगवान की गलती निकाल सकते हैं, भाग्य की गलती बता सकते हैं। कोई भी ऐसा नहीं है जिसकी कि आप गलती न बताते हों, लेकिन अपनी गलती? अपनी गलती पर तो आप विचार भी नहीं करते। अगर आप अपनी गलतियों पर विचार करना शुरू करें, अपनी स्वयं की समीक्षा करें, तो ढेरों की ढेरों चीजें ऐसी मालूम पड़ेंगी, जो हमको नहीं करनी थीं। ढेरों चीजें ऐसी मालूम पड़ेंगी कि जिन कामों को हमने किया है, जिन बातों को अपनाया है, उनको नहीं अपनाना चाहिए था। यह विचार कभी आता है आपको? नहीं, कभी नहीं आता।

मित्रो! मन की बनावट ही कुछ ऐसी है कि अपना जो कुछ है सो अच्छा। हमेशा मन में यही बात बनी रहती है कि अपना स्वभाव भी अच्छा,

अपनी आदतें भी अच्छी, अपना विचार भी अच्छा, सब कुछ अपना ही अच्छा, बाहर वालों का गलत। आमतौर से लोगों की यही मनोवृत्ति होती है और यह मनोवृत्ति गलत है। आध्यात्मिक उन्नति में यह मनोवृत्ति बहुत भयंकर है। आध्यात्मिक उन्नति में इसके बराबर अड़चन डालने वाला दूसरा और कोई व्यवधान है ही नहीं। इसलिए आप पहला काम वहाँ से शुरू कीजिए, आत्मसमीक्षा से। एकांत में चिंतन के लिए जब आप बैठें तो आप यह विचार किया करें कि हम पिछले दिनों क्या भूल करते रहे हैं? हम रास्ता भटक तो नहीं गए, भूल तो नहीं गए। इसके लिए ही जन्म मिला था क्या? जिस काम के लिए जन्म मिला था, वही किया गया? पेट के लिए जितनी जरूरत थी, उससे ज्यादा कमाते रहे क्या? कुटुंब की जितनी जिम्मेदारियाँ पूरी करनी थीं, उसके स्थान पर अनावश्यक संख्या में लोग बढ़ाते रहे क्या और जिन लोगों को जिस चीज की जरूरत नहीं थी, उनको प्रसन्न रखने के लिए उपहार रूप में

लादते रहे क्या? क्यों? आखिर क्या वजह थी? यह सब गलतियाँ हैं। इनकी समीक्षा करना शुरू कीजिए।

इसी तरह अपने खान-पान के लिए, स्वास्थ्य के लिए, आहार-विहार के लिए, जैसा रखना था, वैसा ही रखा क्या? चिंतन की शैली में जैसी शालीनता का समावेश होना चाहिए था, वैसा रखा क्या? नहीं। न हमने अपने शरीर के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन किया, न अपने मस्तिष्क के प्रति कर्त्तव्य का पालन किया, न अपने कुटुंबियों के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन किया। कर्त्तव्यों की दृष्टि से हम बराबर पिछड़ते हुए चले गए। अतः जहाँ-जहाँ पिछड़ते हुए चले गए, उन सबके विषय में एक बार फिर विचार कीजिए।

आत्मसुधार की प्रक्रिया

क्यों, विचार करने से क्या फायदा है? विचार करने से यह फायदा है कि गलतियाँ जब समझ में आ जाएँगी, तो सुधार की भी गुंजाइश बढ़ेगी। गलतियाँ समझ में नहीं आएँगी, तो आप सुधारेंगे ही क्यों?

बीमारी का निर्धारण हो जाए, कोई चैकिंग करके पता चला ले कि आपके भीतर टी० बी० की शिकायत है, तभी तो आप उसका इलाज कराएँगे न ? अगर आपको मालूम ही नहीं है, तो यही कहेंगे कि हमारा तो ऐसे ही शरीर ढीला हो जाता है, कोई बीमारी नहीं है। इसलिए समीक्षा जो है, नाड़ी परीक्षा की तरह है, उसे अपने आप ही कीजिए—भूतकाल के संबंध में। पापों को ही 'क्राइम' नहीं कहते। पाप उन्हें भी कहते हैं, जो कि जीवन को ठीक तरीके से जीने का क्रम है, उसका व्यतिक्रम भी पाप में आता है। 'क्राइम' तो यह है चोरी, डकैती, अपहरण, हत्या बगैरह। यह तो बुरे कर्म हैं ही, मगर यह भी कम बुरा कर्म नहीं है कि आप आलस्य और प्रमाद में ही समय काट दें। आप अपने स्वभाव को गुस्सेबाज बनाकर रखें, ईर्ष्या किया करें, चिंतन और मनन को अस्त-व्यस्त बनाकर रखें। यह भी कोई ढंग है ? यह क्या है ? ये भी गलतियाँ हैं। व्यक्तिगत जीवन में आपके गुण, कर्म और स्वभाव संबंधी गलतियाँ क्या हुई और क्राइम-अपराध, जुर्म

करने के संबंध में क्या भूलें हुईं ? इन दोनों के बारे में एक बार विचार किया कीजिए, यह विचार करना बहुत जरूरी है। इससे यह मालूम होता है कि हमारी गलतियाँ कहाँ हैं और हम कितनी चूक करते रहे हैं और चूक कर रहे हैं।

आत्मनिरीक्षण द्वारा इन चूकों को सुधारने वाला अगला कदम आता है—आत्मपरिष्कार अर्थात आत्मनिरीक्षण के बाद में आत्मपरिष्कार का दूसरा नंबर आता है। सुधार कैसे करें ? सुधार में क्या बात करनी होती है ? सुधार में रोकथाम करनी होती है, मसलन आप शराब पीते हैं, तो शराब पीना बंद कीजिए। आप बीड़ी पीते हैं, सिगरेट पीते हैं, अपना कलेजा जलाते हैं, तो अब विचार कीजिए कि अब हम कलेजा नहीं जलाएँगे। आत्मपरिशोधन इसी का नाम है कि जो गलतियाँ आपसे हुई हैं, उनके विरुद्ध आप रुकावट खड़ी कर दें, रोकथाम के लिए आमादा हो जाएँ और संकल्प लें कि जो भूलें हमसे हुई हैं, अब न हों। इसके लिए स्कीम बनाएँ।

अपने मन से स्वयं लड़िए

मित्रो! गलतियाँ न होने देने का तरीका क्या है? अपने अंदर जो कमजोरियाँ, कच्चाइयाँ आई हैं, उन्हें कैसे दूर करेंगे? यह कमजोरियाँ और कच्चाइयाँ जब मजबूर करेंगी कि जो ढर्रा चलता रहा है, वही चलता रहना चाहिए, तब फिर क्या करेंगे? अपने साथ में पक्षपात और रियायत करने का जब आपका मन उठे, तब आप स्वयं अपने मन के विरोधी हो जाइए। मन को निग्रहीत कीजिए, मन को तोड़िए-मरोड़िए, मन से लड़ाई कीजिए। मन भला आदमी है क्या, जो कहने से मान जाता है? नहीं, किसी का मन कहने से माना नहीं है। आप सबको यही शिकायत रहती है न कि हमारा मन नहीं लगता। तो फिर मन को लगाइए न। मन क्या कोई ऐसा भला आदमी है, जो अच्छे कामों में लग जाएगा? नहीं लगेगा, क्योंकि मन के ऊपर कुछ कुसंस्कार जमे हुए हैं। आप यह उम्मीद करते हैं कि आपका मन अच्छे कामों में लगेगा? ध्यान में लगेगा? भजन में लगेगा? नहीं

लगेगा। इसको लगाना पड़ता है। जिस तरह बैल को हल में चलना सिखाना पड़ता है, घोड़े को जिस तरह जबरन ताँगे में चलाना पड़ता है, जैसे सरकस के जानवरों को कोड़े मार-मारकर अभ्यास कराना पड़ता है, ठीक उसी तरीके से आपको अपने मन को मारना पड़ेगा, मन को तोड़ना-मरोड़ना पड़ेगा, मन से प्रतिद्वंद्विता करनी पड़ेगी, मन से बगावत करनी पड़ेगी। उसको सजा देने की भी जरूरत पड़ेगी, जिससे घूम-फिरकर वह सही रास्ते पर आ जाए।

प्रश्न उठता है कि अगर मन न माने तब? तब फिर अपने खाने में और सोने में किफायत कर डालिए। इतने पर भी यदि मन नहीं माना और आप जहाँ सोचना नहीं चाहते थे, जो करना नहीं चाहते थे, किया, तो आप एक समय का खाना बंद कर सकते हैं। पूरा खाना न बंद करना हो तो आप उसमें कटौती कर सकते हैं। आप चार रोटी खाते हैं और अगर आपका मन गड़बड़ी करता है, तो दो रोटी खाइए, आधा बंद कर दीजिए। कहने का तात्पर्य यह

है कि आप खाने और सोने के साथ में कटौती कीजिए। रोज आप पाँच बजे उठते हैं, तो आज आप प्रातः तीन बजे उठेंगे। दो घंटे हम इसीलिए जागेंगे और टहलेंगे। जैसे मिलिटरी के सिपाही जब गलती करते हैं, तो उनको सजा बोल दी जाती है और वे मिट्टी ढोते हैं, दौड़ लगाते हैं। आप भी जगने की सजा बोल दीजिए कि हम दो घंटे जगेंगे। रोज नौ बजे सोते हैं, तो आज हम ग्यारह बजे सोएँगे, बाहर टहलते रहेंगे, रामायण पढ़ते रहेंगे, नींद से लड़ेंगे। क्यों? यह दंड है।

मित्रो! अपने आप को दंड देने की पद्धति भी आवश्यक है। इसके बिना सुधार होना संभव नहीं है। दंड की प्रक्रिया भी जरूरी है। समझाने भर से ही कहाँ मान जाते हैं, खासतौर से दुराग्रही लोग, दुराग्रही जानवर और दुराग्रही मन। खासतौर से दुराग्रही मन से आप यह उम्मीद मत कीजिए कि आपके कह देने से, पढ़ लेने से या सुन लेने से या समझा देने से बात बन जाएगी। ऐसे नहीं बनेगी।

इसके लिए आपको लड़ना पड़ेगा। मन के साथ बगावत को क्या करना है और उस खाई को कैसे पाटना है, यह तभी तो करेंगे जब पिछली बातें याद आएँ। पिछली बातें याद करने का नाम है, 'चिंतन'। चिंतन आप जरूर किया कीजिए।

मनन भी उतना ही जरूरी

दो बातें हो गईं न। एक हो गया आत्मनिरीक्षण और एक हो गया, आत्मपरिष्कार या आत्मपरिशोधन। यह हो गया चिंतन। चिंतन की दो ही धाराएँ हैं, गलतियों को याद करना और गलतियों को सुधारने के लिए हिम्मत इकट्ठी कर लेना और तदनुरूप कार्यपद्धति बना लेना। इस तरह एकांत का आधा काम समाप्त। इस एकांतसेवन के चिंतन को याद कीजिए। इसके बाद दूसरा वाला कदम उठाइए। यह दूसरा कदम हर दम आपको एकांत में बैठकर उठाना पड़ेगा। इसका नाम है 'मनन'। मनन क्या है? मनन के भी दो हिस्से हैं। जिस तरह चिंतन के दो हिस्से हैं, उसी तरह मनन के भी दो हिस्से

हैं। इनमें से एक का नाम है, आत्मनिर्माण और दूसरे का नाम है आत्मविकास। आत्मनिर्माण क्या है? आत्मनिर्माण उसे कहते हैं कि जो चीज आपके पास नहीं है या जो उच्चस्तरीय गुण, कर्म और स्वभाव आपके व्यक्तित्व में शामिल नहीं हैं, वह शामिल कीजिए। मसलन आप पढ़े-लिखे नहीं हैं, विद्या नहीं है आपके पास, तो आप कोशिश कीजिए कि आपको विद्या पढ़नी है। हम ईमानदारी से रहते हैं, बीड़ी भी नहीं पीते। आपकी बात सही है, लेकिन मैं यह पूछता हूँ कि विद्या की जो कमी है, उसे आप पूरा क्यों नहीं करते? विद्या की कमी को आप पूरा नहीं करेंगे, तो उन्नति कैसे होगी? आपके ज्ञान का दायरा कैसे बढ़ेगा? बुद्धि का विकास कैसे होगा? इसलिए यहाँ आत्मनिर्माण के लिए भी ढेरों काम करने हैं।

आपका स्वास्थ्य कमजोर है, तो इसी से काम नहीं चल जाएगा कि आप पहले बीड़ी पीते थे और अब पीना बंद कर दिया है। बीड़ी पीना तो बंद

करना ही पड़ेगा, पर साथ में एक काम और करना पड़ेगा। स्वास्थ्य-संवर्द्धन करने के लिए आपको अपने आहार में क्रांतिकारी परिवर्तन करना पड़ेगा, ब्रह्मचर्य का पालन करना पड़ेगा और व्यायाम का कोई नया तरीका अख्तियार करना पड़ेगा। ये जो नए तरीके अख्तियार करना है। इसके लिए, प्रगति के लिए यह सब कार्य आत्मनिर्माण में आते हैं। कमी को सुधारने से थोड़े ही काम चल जाएगा, कमी को पूरा भी तो करना पड़ेगा। विद्या को आप नहीं पढ़ेंगे, स्वास्थ्य को आप नहीं सुधारेंगे, जनसंपर्क नहीं बढ़ाएँगे, सेवा के लिए कदम नहीं बढ़ाएँगे, तो काम कैसे बनेगा? अतः जो काम करने हैं, वह तो करने ही पड़ेंगे। आप अपनी गलती को सुधारिए और अपनी योग्यताओं को, अपनी क्षमताओं को और अपनी भावनाओं को विकसित कीजिए। इसी को हम 'आत्मनिर्माण' कहते हैं।

आत्मनिर्माण में बराबर यह देखना पड़ेगा कि हमारे जीवन में क्या कमी है और उस कमी को कैसे

पूरा करें? इसके लिए अपने स्वभाव को, अपनी आदतों को हम ठीक बनाएँ। निर्माण का मतलब बनाना होता है। अपने आप को बनाइए। अपने स्वास्थ्य को बनाइए। अपने व्यक्तित्व को बनाइए। अपने चरित्र को बनाइए। अपने स्वभाव को बनाइए। अपनी कार्यशैली को बनाइए। प्रत्येक चीज को बनाइए। इन सबको बनाने के अतिरिक्त एक और बात का ध्यान रखिए, आप अपने कुटुंब को बनाइए। निर्माण उसका भी जरूरी है। हम अकेले संत बन जाएँगे और रामायण पढ़ेंगे, मिठाई नहीं खाएँगे। आपका कहना ठीक है, परंतु वह भी तो आपका ही अंग है। जो कुटुंब है, वह भी तो आपके साथ जुड़ा हुआ है, निर्माण उसका भी करना पड़ेगा। अगर आप उसका निर्माण नहीं करेंगे, तो सारे के सारे आपके घर वाले कमीने, उजड्ड, मूर्ख, दुष्ट बनकर रहेंगे। ऐसी स्थिति में आपकी शांति कैसे स्थिर रहेगी? फिर आप भजन कैसे कर लेंगे? फिर आप अच्छी जिंदगी कैसे जी लेंगे? फिर आप मीठे वचन का अभ्यास कैसे कर

लेंगे? जब हर आदमी हैरान करेगा, तो आपको गुस्सा कैसे नहीं आएगा?

इसलिए मित्रो! क्या करना चाहिए? अपना व्यक्तिगत जीवन सुख और शांतिमय बनाने के लिए अपने कुटुंब और परिवार के बारे में ठीक वही नीति निर्धारण कीजिए, जो कि अपने बारे में है। कुटुंबी भी तो अपने अंग हैं, ठीक उसी तरीके से जैसे अपने हाथ-पैर हैं। आप यदि कहें कि हम हाथ को तो धोएँगे, पर पैर नहीं धोएँगे। यह क्या बात हुई, आप पैर को क्यों नहीं धोएँगे? आपको पैर भी धोना पड़ेगा। इस तरीके से अपने व्यक्तिगत जीवन को ही अच्छा बनाना पर्याप्त नहीं है। अपने कुटुंब और परिवार का निर्माण करना भी इसी शृंखला में शामिल होता है और समाज-निर्माण भी। इन सबको बनाइए, इनके भीतर भलमनसाहत पैदा कीजिए, आदर्श पैदा कीजिए, चरित्रनिष्ठा पैदा कीजिए, सत्प्रवृत्तियाँ पैदा कीजिए।

सबसे बड़ा निर्माण—आत्मनिर्माण

आप संपन्न बन जाएँ या न बन पाएँ, इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है। गरीबी में भी लोगों ने शानदार जिंदगियाँ जी हैं और अमीर रहते हुए भी आदमी ने इतने कलह उत्पन्न किए हैं कि वे स्वयं तो मरे ही हैं, दूसरों को भी मार डाला है। इसलिए संपन्नता की बात मैं आपसे नहीं कहता। निर्माण से मेरा मतलब गुण, कर्म और स्वभाव से है। आप इन विशेषताओं को, आदमी की शालीनता को, आदतों को और चिंतन की शैली को बदलने के लिए जो कुछ कर सकते हैं, वह सब कुछ कीजिए, लेकिन परिवार के लिए भी कीजिए। परिवार के पंचशीलों में 'श्रमशीलता' का नाम आता है, सुव्यवस्था का नाम आता है, मितव्ययता का नाम आता है, सहकारिता, शालीनता का नाम आता है। ये सब बातें उसमें आती हैं। आप इन सब बातों का स्वयं निर्धारण कीजिए और घरवालों को धारण करवाइए। यह व्यक्तित्व के निर्माण, चरित्र के निर्माण, चिंतन के निर्माण करने का एक

शानदार तरीका है। आप इसको किस तरीके से कार्यान्वित कर सकते हैं, इसके बारे में एकांत में चिंतन और मनन करने जब बैठें, तब यह विचार किया कीजिए। यह तीसरी वाली बात निर्माण वाली धारा है।

चौथी वाली एक और धारा है, जिसे 'मनन' का दूसरा हिस्सा कह सकते हैं अथवा चिंतन-मनन की चौथी वाली कड़ी कह सकते हैं। उसका नाम है, 'आत्मविकास'। आत्मविकास का क्या मतलब है? आत्मविकास का यह मतलब है कि अपने आपके, अपने 'अहं' के दायरे को बढ़ा देना। लोगों का दायरा कूपमंडूक के तरीके से बहुत छोटा है। वे अपने शरीर को ही अपना मानते हैं। यह नहीं मानते कि हम समग्र समाज के एक घटक मात्र हैं। रक्त के एक कण की क्या कीमत हो सकती है? रक्त के सारे कणों का समूह जब मिल जाता है, तभी तो खून का संचार होता है। एक कण से क्या होता है, संयुक्त होने पर ही बात बनती है। इसलिए आप अपने दायरे को सीमित मत कीजिए, आप संकीर्ण स्वार्थपरता

से ऊँचे उठने की कोशिश कीजिए। 'मैं' के स्थान पर आप 'हम' कहना सीखिए। आप 'मैं-मैं' करते रहेंगे, तो आप बकरे की तरह सीमित रह जाएँगे और कूपमंडूक के तरीके से एक ऐसे छोटे दायरे में घिरे रहेंगे, जिसमें आप और आपका कुटुंब, बस इतने ही आदमी रह जाएँगे। आपका समाज से अथवा भगवान से कोई संबंध ही नहीं रह जाएगा, इसलिए अपने आपका दायरा विकसित कीजिए।

आत्मवत् सर्वभूतेषु की भावना

"हम सब के हैं और सब हमारे हैं" इस तरीके से विचार कीजिए। आप '**आत्मवत् सर्वभूतेषु**' इस तरीके से विचार कीजिए। यह सारा संसार हमारे ही समान है। इसी के सहयोग से हम जिंदा हैं। अतः हमारा सहयोग सबको मिलना चाहिए। अगर आप इस तरह से विचार करेंगे, तो आप समाजनिष्ठ होते चले जाएँगे, चरित्रवान नागरिक होते चले जाएँगे, देश, धर्म, समाज और संस्कृति के प्रति आप अपना लगाव व्यक्त करने लगेंगे और उनकी समस्याओं को

भी अपनी समस्या मानने लगेंगे। यह क्या हो गया? आत्मा का विस्तार। आत्मा का विस्तार यही है जिसको कि हम आध्यात्मिक उन्नति के नाम से पुकारते हैं, आत्मिक प्रगति के नाम से पुकारते हैं। यही वह रास्ता है, जिस पर चलते हुए आदमी का पूर्ण लक्ष्य तक पहुँचना संभव है। आपके लिए भी यही रास्ता है।

मित्रो! आपके लिए एवं सभी के लिए एक ही रास्ता है, अपने आप के दायरे को बढ़ा देना। संतों ने यही किया था, महापुरुषों ने यही किया था। वे अपने लिए नहीं जिए। समाज के लिए जिए; देश, धर्म और संस्कृति के लिए जिए। सबके दुःखों में शामिल हुए, औरों के दुःख बँटाते रहे और अपने सुख बाँटते रहे। अपने सुखों को बाँट देना और दूसरों के दुःखों को बँटा लेना, यही कौटुंबिक प्रवृत्ति है। आप अपनी प्रवृत्तियों को कौटुंबिक बनाइए, पारिवारिक बनाइए। अपने परिवार को जिस तरह आप अपना समझते हैं, ठीक उसी तरीके से सारे समाज को भी अपना समझिए, सारे देश को अपना

समझिए, सारी मानव जाति को, प्राणिमात्र को अपना समझिए और अपना दायरा बढ़ाइए।

मित्रो! जो चीजें आपको अपनी मालूम पड़ती हैं, उनसे प्रसन्नता होती है और उनको आप अपना समझते हैं। लेकिन अगर आप सबको अपना मान लें तब? आपको कितना गौरव और प्रसन्नता का अनुभव होगा, कह नहीं सकते। तब सूरज भी आपका, चाँद भी आपका, सितारे भी आपके, नदी भी आपकी, पहाड़ भी आपके, जमीन भी आपकी, सारे इनसान भी आपके, सारे कुटुंब भी आपके, सारा संसार भी आपका। इस तरह अपना दायरा चौड़ा कर लें तब? तब आपकी खुशी का ठिकाना नहीं रहेगा। अभी तो आपने थोड़े से लोगों को, थोड़ी सी वस्तुओं को अपना माना है। उससे भी कुछ न कुछ तो आपको राहत मिलती है, प्रसन्नता होती है, लेकिन जिस दिन आप सबको अपना मानने लगेंगे और अपने को सबका मानने लगेंगे, तब आप देखना कि आपको कैसा मजा आता है, कितना आनंद आता है और

जीवन में, गतिविधियों में कैसा हेर-फेर होता है और आपकी प्रसन्नता किस तरीके से जमीन से आसमान को छूने लगती है। इस तरह आप अपने अंदर ऐसी स्थिति पैदा कीजिए।

संक्षेप में कहें तो चिंतनपरक आत्मसमीक्षा एक, आत्मसुधार दो और मननपरक आत्मनिर्माण एक और आत्मविकास दो। दो मनन की धाराएँ और दो चिंतन की धाराएँ, चारों को मिला दीजिए। यह चारों वेदों का सार है। ये चारों दिशाओं से भगवान के बरसने वाले अनुदानों को प्राप्त करने का सही तरीका है। आपकी उपासना में चिंतन और मनन का भी स्थान रहना चाहिए और न केवल स्थान रहना चाहिए, बल्कि उसे मजबूती से पकड़े रहना चाहिए। छोड़ना किसी भी कीमत पर न हो, अगर आपका ऐसा संकल्प हो तो आप अध्यात्म जीवन में तेजी से आगे बढ़ेंगे और वह लाभ प्राप्त करेंगे जो अध्यात्मवाद की शक्ल में प्राप्त होते रहे हैं।

॥ ॐ शांतिः ॥ ❐

प्रज्ञायोग की आत्मबोध और तत्त्वबोध प्रक्रिया

आत्मिक प्रगति का एक ही मार्ग है कि पिछली योनियों में रहते समय जो पिछड़े संस्कार चेतना भूमि में जड़ जमाकर जहाँ-तहाँ बैठे हुए हैं, उनका उन्मूलन किया जाए और दैवी प्रवृत्तियाँ जो समुचित परिमाण में अभी तक प्राप्त नहीं हो पाईं, उन्हें प्रयत्नपूर्वक अपनाया और बढ़ाया जाए। किसान यही करता है। पिछली फसल के ठूँठों, झंखाड़ों को खोद-खोदकर ढूँढ़ना, ढूँढ़कर एक स्थान पर एकत्र करना और उन्हें आग लगाकर जला डालना, इतना करने के बाद खेत को खाद-पानी देते हैं, जुताई-गोड़ाई करते हैं, तब कहीं बीज डालने का अवसर आता है। इससे पूर्व ही कोई बीज बिखेरने की मूर्खता तो कर सकता है। पर उस स्थिति में उसे प्रतिफल प्राप्त करने की उसी तरह आशा करनी चाहिए जिस तरह सूखे आकाश से जलवृष्टि की कल्पना करना व्यर्थ होता है।

आत्मसाधना भी ऐसी ही कृषि है, जिसमें उपज के लिए किसान जैसी कलाकारिता से कम में काम नहीं चलता।

आत्मिक प्रगति का भवन चार दीवारों से मिलकर बनता है, चार स्तंभों के सहारे खड़ा होता है। उन आधारभूत चार पायों को (१) आत्मचिंतन (२) आत्मसुधार (३) आत्मनिर्माण तथा (४) आत्म-विकास के नाम से पुकारा जाता है। इन चारों में से किसी एक को भी छोड़कर आगे नहीं बढ़ा जा सकता। भोजन के साथ जल भी आवश्यक है, शाक और फल भी। अकेले धोती या कुरता वेशभूषा परिपूर्ण नहीं बनाते, उनके साथ टोपी और बनियाइन हो तो पूर्णता आती है। इन चारों में से एक भी ऐसा नहीं जिसकी उपेक्षा कर के आत्मिक प्रगति के पथ पर आगे बढ़ा जा सके।

आत्मचिंतन का अर्थ है—आत्मसमीक्षा। अपना शवच्छेद। प्रयोगशालाओं में पदार्थों का विश्लेषण वर्गीकरण करके देखा जाता है कि इसमें कौन-कौन

से तत्त्व मिले हैं, पोस्ट मार्टम में यह देखा जाता है, आखिर मृत्यु शरीर के किस अंग में चोट और अवरोध उत्पन्न होने के कारण हुई। आत्मचिंतन का अर्थ यह ढूँढ़ना है कि परमात्मा की दी हुई विभूतियों और अमानतों का कितने अंश में सही उपयोग हुआ। हर श्रेष्ठ मनुष्य की दिनचर्या में सुव्यवस्थित श्रम की दृष्टि से स्फूर्तिवान, मानसिक दृष्टि से, सक्षम व्यवहार की दृष्टि से, कुशल चिंतन की दृष्टि से, प्रखर व्यक्तित्व की दृष्टि से, आत्मावलंबी व आत्मसम्मानी होना चाहिए। ऐसा तभी संभव है, जब आंतरिक विभूतियों का और बाह्य साधनों का सदुपयोग हो। आत्मचिंतन में अपने गुण, स्वभाव और कर्म की कड़ाई के साथ परीक्षा करनी पड़ती है। उसमें आत्मा को दीन-दलित बनाने वाले तत्त्व तो नहीं आ घुसे। उन्हें एक-एक करके खोज निकालना और मार भगाने का उपक्रम बनाना ही चिंतन है।

ऐसा करते समय शरीर और आत्मा को भिन्न न माना गया, दोनों के हितों का वर्गीकरण न किया

गया तो शरीर की अनावश्यक माँगों को, इंद्रिय लिप्साओं को आत्महित मान लेने की भूल होती रहेगी। स्मरण रहे चरित्र और व्यक्तित्व को ऊँचे उठाने वाले, प्रामाणिकता को खरा सिद्ध करने वाले आदर्श कर्तृत्व ही आत्मा की विभूतियाँ हैं। उनके विकास की कल्पना करना ही सच्चे अर्थों में आत्म-चिंतन कहा गया है।

इस प्रक्रिया को वैयक्तिक जीवन की दुष्प्रवृत्तियों का निराकरण और सत्प्रवृत्तियों का संवर्द्धन करके ही पूरा किया जा सकता है। यह आत्मिक प्रगति का दूसरा चरण है। परमात्मा का प्रकाश जहाँ भी प्रकट होगा, वहाँ सर्वप्रथम दुष्ट दुर्बुद्धि पर कुठाराघात होगा, अज्ञान अंधकार मिटेगा। वे आदतें जो अब तक अपनी प्रसन्नता का कारण बनी हुई थीं और बार-बार ललचाती रहती थीं, उनकी निरुपयोगिता तुरंत सिद्ध हो जाती है। वे स्वतः निरर्थक उगने लगती हैं और उन्हें निकाल बाहर करने का साहस भी उखड़ने लगता है।

तो भी यह कार्य उतना आसान नहीं। इंद्रियों का दमन होने पर वे मरती नहीं और अधिक उत्तेजित हो उठती हैं। उस स्थिति में मानसिक संतुलन और दृढ़ता बनाए रखना, बार-बार वैराग्य भावना मस्तिष्क में उमगाते रहना आवश्यक है। तभी आत्मसुधार का क्रम पूरा होता है। इसमें निर्दयता भी अपनानी पड़ती है, तप तितिक्षा इस प्रचलित ढर्रे में परिवर्तन का ही दूसरा नाम है। यह दूसरा चरण उठ जाने पर प्रगति का चक्र गतिशील हो उठता है।

आत्मोत्थान का तीसरा चरण है, आत्मनिर्माण अर्थात श्रेष्ठ सज्जनों के गुण, कार्य और स्वभाव की जो विशेषताएँ होनी चाहिए उनकी पूर्ति के लिए योजनाबद्ध प्रयत्न। कँटीली झाड़ियाँ हटाई भर जाएँ उनकी जड़ें खोदकर उनके स्थान पर पुष्पों के पौधे न लगाए जाएँ तो एक ओर झाड़ियों के फिर से जड़ पकड़ लेने की आशंका रहेगी तो दूसरी ओर फूलों के खिलने से जो सुवास और सौंदर्य उपलब्ध होने वाला था वह भी हाथ नहीं आ सकता। बीमारी दूर

हो गई यह आधा काम हुआ। अब स्वास्थ्य-संवर्द्धन की व्यवस्था भी हो, व्यायाम भी हो, टहलना और पुष्टिदायी आहार भी। आत्मिक प्रगति के क्षेत्र में सद्गुणों के, परमार्थ के गुणों को धारण करके यह प्रतिष्ठापना की जाती है। व्रत धारण किए जाते हैं, श्रेष्ठता-संवर्द्धन के संकल्प उभारे जाते हैं और उन पर चल पड़ने का अभ्यास किया जाता है, तभी इस तृतीय चरण की पूर्ति होती है।

आत्मोत्कर्ष की अंतिम भूमिका आत्मविकास की है। संत, शहीद और सुधारक इस चतुर्थ भूमिका के ही उपादान होते हैं। चौथेपन में संन्यास का विधान शास्त्रों में है। वहाँ तक पहुँचते-पहुँचते ज्ञान, कर्म और भक्ति पक जाते हैं। जीवन की नश्वरता, आत्मा का अविनाशी भाव स्पष्ट हो जाता है। सारा समाज एक कुटुंब और संपूर्ण सृष्टि अपने घर जैसी लगने लगती है। विश्वबंधुत्व और वैराग्य की भावनाओं को इस स्तर तक पहुँचा देने से जिस तरह संन्यासी का जीवन समाज के लिए समर्पित हो जाता

है, उसी तरह की भावना इन चतुर्थ भूमिका में पहुँचने के लिए अपनानी पड़ती है। अपनी महत्त्वाकांक्षाएँ नाम, यश एवं प्रतिष्ठा को नितांत हेय मानकर अपनी क्षमताओं की सच्चे हृदय से लोक-कल्याण में उपयोग की रूपरेखा बनानी पड़ती है। धर्म, समाज और संस्कृति के लिए काम करने में रस लेना पड़ता है, आत्मविकास की यह चतुर्थ भूमिका जितनी परिपक्व होती जाएगी जीवात्मा उतने ही अंशों में महात्मा, देवात्मा और परमात्मा के रूप में विकसित होती चली जाएगी।

एकांतसेवन अंतर्मुखी जीवनचर्या का अभिनव अभ्यास करने की दृष्टि से आवश्यक माना गया है। इसे गुफा प्रवेश की उपमा दी जाती है। तपश्चर्याओं में एक गुफा प्रवेश भी है। सब ओर से अपने को समेटकर आत्मकेंद्रित होने, अंतर्जगत में प्रवेश करने, आंतरिक पर्यवेक्षण एवं परिवर्तन की पृष्ठभूमि बनाने के लिए वातावरण नितांत आवश्यक है। आमतौर से मन बहिर्मुखी रहता है। बाहर के जाल-जंजाल बुनता

रहता है। फलतः आत्मविकृति बढ़ती जाती है। शरीर और शरीर से संबंधित हेरा-फेरी ही सब कुछ बन जाती है और अपना स्वार्थ ओछेपन तक विस्तृत हो जाता है। शरीर और उससे संबंधित साधना ही व्यक्ति के लिए सब कुछ बन जाते हैं। अपने आपे का होश-हवास खो बैठने वाले मद्यप जिस प्रकार बेतुके आचरण करते हैं प्रायः वही स्थिति मानसिक क्षेत्र में व्यामोहग्रस्तों की होती है। इसी भुलावे-छलावे को माया कहा जाता है। माया के बंधन अति निविड़ माने जाते हैं।

व्यामोह से, भव बंधन से उतरने के लिए भी चार उपाय हैं—दो बाह्य और दो आंतरिक। बाह्य निर्भरता वाले स्वाध्याय एवं सत्संग हैं। आंतरिक दो हैं—एक चिंतन दूसरा मनन। इन चारों को चारपाई के चार पाये कहा जा सकता है। हाथ, पैर, धड़, सिर, इन चार भागों में शरीर विभक्त है। इसी प्रकार आत्मनिर्माण के लिए भी इन चारों का मनोयोग के साथ अवलंबन करना पड़ता है। ❐

सद्वाक्य

- ✧ लोग क्या कहते हैं, इस पर ध्यान मत दो। सिर्फ यह देखो कि जो करने योग्य था, वह बन पड़ा या नहीं।
- ✧ धरती पर प्रेम, आत्मीयता एवं दूसरों के हित में लगे रहना ही पुण्य है।
- ✧ शांति से क्रोध को, भलाई से बुराई को, शौर्य से दुष्टता को और सत्य से असत्य को जीतें।
- ✧ दूसरों की निंदा करके किसी को कुछ नहीं मिला। जिसने अपने को सुधारा उसने बहुत कुछ पाया।

मुद्रक—युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)

ज्ञानयज्ञ में आप भी आहुति दें

समस्त कठिनाइयों का एक ही उद्गम है—मानवीय दुर्बुद्धि। जिस उपाय से दुर्बुद्धि को हटाकर सद्बुद्धि स्थापित की जा सके, वही मानव कल्याण का, विश्वशांति का समाधानकारक मार्ग हो सकता है।

युगऋषि परम पूज्य पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने वर्तमान युग की समस्याओं के समाधान हेतु हजारों पुस्तकें लिखीं हैं। इन पुस्तकों को जन-जन को पढ़ाना, इस युग का युगधर्म है। पुस्तक सूची निम्न पते पर पत्र डालकर निःशुल्क मँगा लें।

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

फैक्स : (०५६५) २५३०२००

E-Mail : yugnirman@awgp.org